योगसिद्धान्तचन्द्रिका में अवतारवाद की अवधारणा

शोधच्छात्रा- योगिन्द्रा देवी
संस्कृत विभाग- विश्वेश्वरानन्दविश्वबन्धुसंस्कृत एवं भारत-भारती
अनुशीलन संस्थान,पंजाब विश्वविद्यालय, साधु आश्रम, होशियारपुर

भारतीय दार्शनिक परम्परा में किसी परमसत्ता के अस्तित्व का विचार विभिन्न सम्प्रदायों में प्रकारान्तर से उपलब्ध होता है।पौराणिक साहित्य में इसी परमसत्ता के लौकिक स्वरूप से सम्बन्धित विविध अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है। अवतारवाद का सामान्य अभिप्राय - भगवान् का अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा भौतिक जगत् में मूर्तरूप से आविर्भाव अथवाप्रकट होना है।भारतीय दर्शनों में सुविख्यात योगदर्शन में ईश्वर के स्वरूप-विवेचन के साथ ही अवतार के सम्प्रत्यय का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके आधार पर अवतारवाद के स्वरूप पर पर्याप्त चिन्तन योगसूत्र की ही आचार्य नारायणतीर्थ विरचित टीका योगसिद्धान्तचन्द्रिका में किया गया है।

कालत्रय में क्लेश, कर्म, विपाक, आशयों से असंसृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर है।ईश्वर अविद्या,अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश पांच क्लेशों से रहित है। क्लेशों का सम्पर्क ईश्वर से न तो अतीत में था, न भविष्य में अर्थात् वह सदा से ही क्लेशों से मुक्त है। ईश्वर नित्यमुक्त है, वह किसी भी काल में बन्धनों से युक्त नहीं रहा। धर्म-अधर्म कर्म है, कर्मों का फल विपाक है,विपाक से बनने वाले संस्कार वासना है, यही आशय है। ईश्वर में क्लेश, कर्म,वासनाओं का लेशमात्र भी नहीं होता है। पुरुषविशेष के विवेचन के सम्बन्ध में योगसिद्धान्तचन्द्रिकाकार कहते हैं, कि जो प्राकृतिक आदि बन्धनों को पार करके मुक्त हैं जैसे हिरण्यगर्भादि, वे ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर तीनों कालों में क्लेशादि से अछूता है। ईश्वर सदैव मुक्त है-

तत्र यः परमात्मा हि स नित्यं निर्गुणं स्मृतः ।
कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षौ स युज्यते॥

ईश्वर साम्य तथा अतिशय से रहित है, अतः अद्वितीय है। ईश्वर निरतिशय रहता है, यह निरतिशय ही ईश्वर के सर्वज्ञत्व का अनुमापक है। तीर्थ कहते हैं कि ईश्वर सर्गादि में उत्पन्न ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भिन्न है। परमेश्वर तो इनसे परे है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र का लोक में जो भेद देखा जाता है, वह परमात्मा से अभिहित है। इन्हें दो प्रकार का कहा गया है। श्रौ तथा पौराण। श्रौता साक्षात् परमेश्वर के अवतार हैं तथा पौराण संसारी पुरुषविशेष हैं। ये अविद्या के कारण विषय कर्मों तथा इनके फलों में भटकते रहते हैं। ये साक्षात् परमेश्वर के अवतार नहीं है अपितु शक्ति-शक्तिमदभेद से उपासक के लिए परमेश्वर कहे जाते हैं, तत्त्वत: नहीं।इसी तरह रामादि तथा उनके अवतार सभी जीवविशेष हैं न कि परमेश्वर के साक्षात् अवतार। ये ईश्वर की सभी शक्तियों से पूर्ण होने के कारण ही संसार में अनेक प्रकार से आविर्भूत एवं तिरोभूत होते रहते हैं-

ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् प्रधाना ब्रह्मशक्तय:।
ततो न्यूनाश्च मैत्रेय देवा यक्षादयस्तथा।।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां य पर: स ईश्वर:।।

"स: पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्" इस योगसूत्र से भी यही सूचित होता है, क्योंकि इसमें ईश्वर का गुरुत्व तथा ब्रह्मादि का शिष्यत्व रूप में प्रतिपादन होने के कारण ब्रह्मादि में अल्पज्ञत्व आदि ज्ञात होते हैं। तीर्थ ने उपर्युक्त मत को अयुक्त ठहरते हुए कहा है कि ब्रह्मादि को जीव प्रतिपादित करने पर भक्ति के प्रवर्त्तक तन्त्र, पुराण, इतिहासादि अर्थहीन हो जाएंगे। ब्रह्मादि की अल्पज्ञता जान कर कोई भी व्यक्ति उनकी आराधना नहीं करेगा। वस्तुत: ईश्वर में अनेक प्रकार की शक्तियाँ हैं। ईश्वर के अवतारों को छोटा या बडा कार्य करता हुआ देख कर उनमें उत्कृष्टता तथा अपकृष्टता की कल्पना करना उचित नहीं है।

अवतारवाद के विवेचन के प्रसंग में योगसिद्धान्तचन्द्रिकाकार स्वमत के रूप में श्रुतियों के उद्धरणों से पुष्टि करते हुए कहते हैं कि -"एकमेवाद्वितीयम्। एको देव: सर्वभूतेषु गूढ:। सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।"ये श्रुतियां अवतारवाद की बाधक हैं, परन्तु "एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा। एकं रूपं बहुधा य: करोति। अजायमानो बहुधा विजायते।।"ये श्रुतियाँ ईश्वर के अवतार की प्रबल समर्थक हैं। इन श्रुतियों को उद्धरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए नारायणतीर्थ ने अवतारवाद का समर्थन किया है। वस्तुत: ईश्वर एक है परन्तु वह अपने रूप को अनेक प्रकार से प्रतिभासित करता है। ईश्वर-अवतारक्रम को योगसिद्धान्तचन्द्रिकाकार ने अन्तर्यामी तथा बहिर्यामी भेद से दो प्रकार का प्रतिपादित किया है।

अन्तर्यामी ईश्वर - ईश्वर का अन्तर्यामी रूप अन्त: स्थित होकर प्रेरक होता है। अन्तर्यामी ईश्वर दो प्रकार का कहा गया है। चित् अन्तर्यामी तथा अचित् अन्तर्यामी। उपासकों के लिए ईश्वर सविग्रह होकर प्रकट होता है, परन्तु निर्गुण परमेश्वर को मानने वाले उसका चिद्रूप से ही अनुभव करते हैं।

बहिर्यामी ईश्वर- बहिर्यामी ईश्वर बाहर स्थित होकर नियामक है। ईश्वर का यही रूप लोक तथा शास्त्र में अवतार नाम से प्रसिद्ध है। बहिर्यामी परमेश्वर के दो अवतार हैं। नित्यविभूतिनिलय तथा लीलाविभूतिनिलय। नित्यविभूति निलय

अवतारी रूप है। लीलाविभूतिनिलय व्यूह तथा अवतार भेद से दो प्रकार का है। व्यूह रूप वेदादि ज्ञानप्रदाता तथा सृष्ट्यादि सम्पादक दो गुणों का व्यञ्जक है। यही ब्रह्मादि रूप से व्याप्त होकर सभी देह में स्थित होते हैं। वही सर्ग, स्थिति, प्रलय में ब्रह्म होता है। व्यूह अवतार स्मृतियों में इस प्रकार कहा गया है-

षाड्गुण्यपरिपूर्णोऽसौ वासुदेव: सनातन:। त्रिधा कृत्वात्मनो रूपं चतुर्धा कुरुते जगत्॥ अन्तर्यामित्वमापन्न: सर्गं सम्यक् करोति हि।

लीलाविभूतिनिलय अवतार रूप तो स्वसंकल्पपूर्वक अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रकट होकर भक्त पर कृपा करने वाला वात्सल्य आदि अनेक गुणों का सम्पादन करता है।

माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं न तु मां द्रष्टुमर्हसि॥

अवतारभेद भी विभव तथा अर्च भेद से दो प्रकार का होता है। विभवावतार गमनागमन संश्लेष-विश्लेष योग्य दिव्य देह को प्रकट करके स्थित होने वाला है। विभवावतार भी स्वरूप तथा आवेश भेद से दो प्रकार का है। स्वरूपावतार सर्वेश्वर है, स्वीय प्राकृत रूप से इतर सजातीय रूप को प्रकट करते हुए स्थित रहता है।

स्वरूपावतार भी मनुज अवतार, अमनुज अवतार भेद से दो प्रकार का है। मनुज राम, कृष्णादि मानव की आकृति को धारण करने वाले हैं। अमनुज मानव के अतिरिक्त जैसे देव, तिर्यक्, मत्स्य, उपेन्द्र आदि हैं। आवेशावतार भी स्वरूप तथा शक्ति भेद से दो प्रकार का है। स्वरूप आवेशावतार किन्हीं चेतनों में अपने स्वरूप में स्थित रहता है। जैसे कपिल, अनन्त, व्यास, परशुराम आदि। शक्ति आवेशावतार शक्ति के द्वारा सन्निधि भूय होकर स्थित रहता है जैसे पृथु, धन्वन्तरि आदि।

अर्चावतार अर्चक के पराधीन होकर स्वस्थिति में अवस्थित रहता है। वह गृह तथा आयतन भेद से दो प्रकार का है। गृहार्चावतार से अभिप्राय उपासकों द्वारा घर तथा मन्दिर में पूजा के रूप में संस्कारित की गई मूर्त्ति से है। आयतन अर्चावतार से अभिप्राय शालग्रामादि में स्वसंकल्प के द्वारा भगवान् की सन्निधि करने से है। आयतन अर्चावतार शालग्रामादि पत्थर विशेषों में प्रसिद्ध है। इसलिए इनकी परमात्मा रूप में पूजा करके फल लाभ होता है, इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित है- "चराचरेषु सर्वेष्वपि स एव शक्त्या सन्निहित:"।

नारायणतीर्थ का कथन है कि यद्यपि सर्वव्यापक परमात्मा संसार के सभी पदार्थों में स्वशक्ति से सन्निहित है, अत: सभी पदार्थ परमात्मस्वरूप हैं, तथापि जिन पदार्थों में विचित्र कार्य करने की शक्ति निगूढ है तथा जो अपनी शक्ति का

प्रदर्शन भी करते हैं, वे ही ईश्वर के अवतारी कहे जाते हैं, सभी नहीं। इसी तरह पृथु, धन्वन्तरि आदि को अलौकिक शक्ति से विशिष्ट होने के कारण अवतार कहा गया है। सच्चिदानन्दं विग्रहं पञ्चपदं वृन्दावनभूरुहतलासीनम् इस श्रुति के आधार पर ब्रह्म, विष्णु, रुद्रादि भी अवतार हैं। रामकृष्णादि को भी स्वरूपविभवावतार कहा गया है, चाहे वे आपातत: जीव प्रतीत होते हों। रामादि अवतार होने के कारण यदि वे लोकवल्लीलाकैवल्य न्याय के अनुसार मनुष्यादि रूप धारण कर सामान्य जीवों की भाँति वशिष्ठ आदि का गुरुत्व स्वीकार करते हैं, तो उसमें भी कोई हानि नहीं है, क्योंकि वे समर्थ हैं। भगवान के किसी एक रूप में मुग्ध होकर अन्य रूपों का अपकर्ष प्रतिपादन करने वाले की दुर्गति भी कही गयी है।

योगसिद्धान्तचन्द्रिकाकार अवतारवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके उसे लौकिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। तीर्थ कहते हैं कि जिस प्रकार भूमि में बीज,अंकुर तथा वृक्ष होते हैं एवं वृक्ष में पक्व तथा अर्धपक्व फल होते हैं, उसी प्रकार शुद्ध चैतन्य परमात्मा में ईश, सूत्र तथा विराट हैं। विराट में मत्स्य, कूर्म, कृष्ण तथा सब लोग हैं। जिस प्रकार पके हुए फल वाले बीज में वृक्ष को उत्पन्न करने का सामर्थ्य है, किन्तु बिना पके हुए फल वाले बीज में वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं होती है, उसी तरह कृष्णादि अवतारों में जगत् की उत्पत्ति का सामर्थ्य है, सांसारिक जीवों में नहीं।जैसे पृथ्वी की सहायता से बीज अंकुर को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार ईशादि भी मायाविशिष्ट शक्ति के योग से चित्तापूरित होकर सूत्रादि भाव को प्राप्त करते हैं।

सन्दर्भ -

1. कालत्रयेऽपि क्लेशतत्फलरहित इत्यर्थ:।योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 30.
2. अविद्यादय: क्लेशा: कुशलाकुशलानि कर्माणि तत्फलं विपाक: तदनुगुणा वासना आशय:। व्यासभाष्य, पृष्ठ, 80.
3. हिरण्यगर्भादय: प्राकृतिकादीनि बन्धनानि..... ईश्वरस्तु सदैव क्लेशादिभिरसंसृष्ट:। योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 30.
4. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 30.
5. नास्ति साम्यमतिशयञ्च यस्मात् ईश्वरस्य अद्वितीयम्। योगसिद्धान्तचन्द्रिका,पृष्ठ,30.
6. तदेव तत्रेश्वरे सार्वज्ञनुमापकमित्यर्थ: ।योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 34.
7. सर्गाद्युत्पन्नसत्यलोकादिमात्राधिकारिब्रह्मविष्णुरुद्रादिभ्यो भेदम्। योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ,34.
8. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 34.
9. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ,36.
10. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ,36.
11. योगसूत्र.१.२६.
12. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
13. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.

14. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
15. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
16. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
17. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
18. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
19. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
20. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
21. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
22. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 37.
23. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
24. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
25. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
26. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
27. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
28. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
29. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
30. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
31. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
32. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 38.
33. योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृष्ठ, 39.

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. पातंजलयोगदर्शन, वाचस्पतिमिश्र कृत तत्त्ववैशारदी टीका सहित विज्ञानभिक्षु कृत योगवार्त्तिक व्यासभाष्यसहित, श्रीनारायणमिश्र, भारतीय विद्या प्रकाशन ,वाराणसी, 1998.
2. पातंजलयोगदर्शन हरिहरानंद आरण्य, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली,1975.
3. पातंजल योगदर्शनम् ,तुलसीराम,स्वामी प्रेस, मेरठ,१९७७.
4. पातंजल योगशास्त्र एक अध्ययन, डा. ब्रम्हानंद अवस्थी, इंदु प्रकाशन, भोपाल,१९७८.
5. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, वाराणसी, 2011.
6. योगदर्शनम्, श्री कृष्णवल्भाचार्य, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 2001.
7. योगसारसंग्रह डा. रामशंकर भट्टाचार्य,भारतीय विद्या प्रकाशन,वाराणसी,1989.
8. योगसारसंग्रह, विज्ञानभिक्षु,व्याख्या पवन कुमारी, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली,1981.
9. योगसूत्र (व्यासभाष्य सहित),व्याख्या. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,2006.
10. योगसिद्धांतचंद्रिका, डा. विमला कर्णाटक ,चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी,2000
11. हठयोग एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं हठयोगप्रदीपिका, सुरेंद्र कुमार शर्मा,ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली,1985.